ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 301-304

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-III, Issues-31, YEAR- Sept.-2021

किशोरावस्था में छात्र/छात्राओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ0 अजीता रानी E-mail:ajitarani1@gmail.com

Received- 22.07.2021, Revised- 25.07.2021, Accepted - 02.08.2021

सारांश : ***सारांश : मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। बालक समाज का महत्वपूर्ण एवं अभिन्न अंग होता है उसे समाज में अपने को स्थापित करने के लिए बहुत कुछ सीखना पड़ता है। वह अपनी अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति समाज से ही करता है। यही आवश्यकताएं बालक के लक्ष्य प्राप्ति की ओर प्रेरित करती है। उसे और वह आगे बढता है। जब वह अपने लक्ष्य को सरलता से प्राप्त कर लेता है तो उसे संतोश का अनुभव होता है परन्तु जब लक्ष्य प्राप्ति में बाधाओं का सामना करना पडता है तो एक अप्रिय अनुभूति होती है। जिससे बालक में कुण्ठा, असंतोश, हताशा एवं निराशा आ जाती है असंतोश एवं निराशा के परिणाम स्वरूप बालक में मानसिक द्वन्द उत्पन्न हो जाता है और वह बाधाओं को दूर करने का प्रयास करता है और उसकी यह प्रयास यदि सृजनात्मक एवं परिस्थितियों के अनुकूल रहा हो वह वातावरण के साथ समायोजन स्थापित कर लेता है और यदि बाधाओं को दूर करने में असमर्थ रहा तो वह अवंछित मार्ग को अपना लेता है, तो वह कुसमायोजित हो जाता है। समायोजन की यह प्रकिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है। गेट्स एवं अन्य के अनुसार– "समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रकिया है। जिसके द्वारा व्यक्ति अपने एवं अपने वातावरण के बीच सन्तुलित सम्बन्ध रखने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है।"***

कुंजीभूत शब्द–सामाजिक प्राणी, अप्रिय अनुभूति, कुण्ठा, असंतोश, हताशा।

मानव को सफल जीवन व्यतीत करने के लिए अपने वातावरण एवं परिस्थितियों के साथ समायोजन स्थापित करना आवश्यक होता है उसके जीवन में अनेक प्रकार की अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियॉं आती रहती है। जिसका उसे सामना करना पड़ता है। प्रत्येक बालक अपनी अलग–अलग क्षमता के अनुसार समायोजन करने का प्रयत्न करता है, कुछ बालक प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने में सफल होते है। और कुछ हार मान कर अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठते है। अतएवं अच्छें समायोजित बालक वे होते हैं जो परिस्थिति को अनुकूल बनाते हें। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते है और मानसिक द्वन्द्व से बच जाते हैं।

अतः सुखी एवं आनन्ददायक जीवन जीने के लिए आवश्यक है। कि बालक का व्यवहार समायोजित हो। समायोजन का स्वभाव कई कारकों (आन्तरिक आवश्कताओं एवं बाह्य आवश्यकताओं) से निर्धारित होता है। जब कोई संघर्ष की स्थिति आन्तरिक आवश्कयताओं तथा बाह्य आवश्यकताओं द्वारा उत्पन्न होती है। तो व्यक्ति के समक्ष तीन विकल्प होते है – प्रथम व्यक्ति अपनी आन्तरिक आवश्यकताओं का दमन करें दें, द्वितीय वह वातावरण में अपनी आवश्यकाताओं की पूर्ति के लिए वांछित परिवर्तन करें, तृतीय वह अपनी मानसिक प्रतिरक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग संघर्ष की स्थिति से बचने तथा व्यक्तित्व के सन्तुलन को बनाये रखने के लिए करता है। अतः स्पष्ट है कि समायोजन व्यक्ति के द्वारा की जाने वाली वह संचेतन क्रिया है। जिससे वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों में सन्तुलन स्थापित करता है। तभी तो वह अपना कार्य उचित ढंग से करने में सफल होता है।

मानव जीवन के विकास की प्रक्रिया में किशोरावस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। किशोरावस्था मानव विकास की तीसरी अवस्था है जो षैशवावस्था तथा बाल्यावस्था के उपरान्त आती है। बाल्यावस्था के समापन अर्थातः 13 वर्ष की आयु से किशोरावस्था आरम्भ होती है। इस अवस्था के आरम्भ होने की आयु, लिंग, प्रजाति, जलवायु, संस्कृति तथा व्यक्ति के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। सामान्यतः बालकों की किशोरावस्था लगभग 13 वर्ष की आयु में और बालिकाओं की 12 वर्ष की आयु में आरम्भ होती है। किशोरावस्था को बाल्यावस्था तथा युवावस्था के मध्य का संधिकाल भी कहा जाता है।

किशोरावस्था को दो भागों में विभाजित किया गया है –

(अ) पूर्व किशोरावस्था – मनोवैज्ञानिको के अनुसार यह अवस्था 11 से 14 वर्ष के बीच होती है। कन्याओं में यह एक वर्ष पूर्व आ जाती है।

(ब) किशोरावस्था या उत्तर किशोरावस्था – मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यह अवस्था 15 से 20 वर्ष के मध्य की अवस्था है।

किशोरावस्था में व्यक्तिगत भिन्नता पाई पाती है। कई बालकों तथा बालिकाओं में किशोरावस्था सम्बन्धी लक्षण जल्दी आ जाते हैं और स्पष्ट रूप से उभरने लगते हैं। तथा अन्य बालक–बालिकाओं में देर से उत्पन्न होते हैं। और धीरे – धीरे उनमें स्पष्टता आती जाती है। इस अवस्था में किशोरों के चेहरों पर अधिक ताजगी स्पष्ट दिखाई देती है। वह उमंग, उत्साह और जोश से भरे होते हैं। इसी कारण से यह अवस्था स्वर्ण–काल कहलाती है।

यह अवस्था एक ऐसी अवस्था है जिसमें युवा बालक तथा बालिकाओं अपने माता–पिता के नियन्त्रण से अधिकाधिक स्वतन्त्रता चाहते हैं, विषेष रूप से यौन सम्बन्धी गतिविधियों में। इस अवस्था में

एसोसिएट प्रोफेसर– मनोविज्ञान विभाग, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामपुर (उ0प्र0), भारत

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-III, Issues-21, YEAR- Sept.-2021

बालक के शरीर में कुछ स्पष्ट शारीरिक परिवर्तन होने लगते हैं। इन शारीरिक परिवर्तनों के कारण किशोर के मन में एक तरफ स्वतन्त्रता की कामना तीव्र होती है और दूसरी तरफ यह स्वतन्त्रता से भयभीत भी होने लगते हैं।

इस अवस्था भारी तनाव का काल भी है क्योंकि भावी वयस्क को प्रातः स्वयं ही कई निर्णय लेने होते हैं, जैसे जीवन साथी का चुनाव और अपने व्यवसाय का चुनाव आदि से सम्बन्धित निर्णय उसे स्वयं ही लेने हों तो उसके सामने दुविधा आ जाती है क्योंकि उसके बाद उसे नयी स्थिति के अनुसार नये कार्य करने होते हैं। उससे यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह निर्णय करते समय पारिवारिक परम्पराओं और सांस्कृतिक मूल्यों को ध्यान में रखें। किशोर पर लगाये गये इस प्रकार के नियन्त्रण उसके मनोभावों के प्रतिकूल होते हैं, अतः किशोर को तनावों का शिकार होना पड़ता है। इस अवस्था की यह विडम्बना होती है कि बालक स्वयं को बड़ा समझता है और बड़े उसे छोटा समझते हैं। किशोर के आवेगों और संवेगों में इतनी परिवर्तनशीलता होती है कि वह प्रायः विरोधी व्यवहार करता है तथा अपनी इच्छाओं के पूरा न होने पर आक्रामक हो जाता है।

किशोरावस्था में बालक परिवार के अतिरिक्त पड़ोस, विद्यालय, खेल के सार्थियों और नवागुन्ताकों के सम्पर्क में आता है। इन सभी के विचारों एवं व्यवहारों से उसे समायोजन करना होता है। समायोजन और किशोरावस्था एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। किशोरावस्था व्यक्ति के जीवन की अत्यन्त विकट अवस्था होती है। इस अवस्था में व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और सामाजिक सन्तुलन विगड़ने लगता है। जिसके परिणामस्वरूप उसे अपने साथ, अपने परिवार के साथ, समाज के साथ नया समायोजन स्थापित करना पड़ता है।

किशोरावस्था में व्यक्ति के शरीर में तेजी के साथ असन्तुलित रूप से परिवर्तन होने लगता है। उसकी लम्बाई, उसके भार तथा शरीर के अन्य अंगों में भी तेज तथा असन्तुलित वृद्धि होने लगती है, जिसके परिणामस्वरूप वह एक प्रकार की बेचैनी अनुभव करने लगता है। उसे अनुभव होता है कि अपने सहपाठियों की संगति में वह विचित्र सा लग रहा है। लड़कियों को बेचैनी करने वाले शारीरिक तत्व इस प्रकार होते हैं– मोटापा, लम्बाई चेहरे का आकार–प्रकार, पतलापन, छातियों का हल्का उभार, सामान्य शारीरिक आकृति, चेहरे पर कील तथा छाइयाँ, पीठ पर उभार आदि। लड़कों को वेचैन करने वाले शारीरिक तत्व इस प्रकार होते हैं – लम्बाई, चौडाई में अनुपात का अभाव, चेहरे का असामान्य आकार–प्रकार, चमड़ी पर धब्बें तथा की आदि, झुकी हुई टाँगें, रीढ़ की हड्डी का टेढ़ापन, कन्धों की चौडाई का अभाव, लिंग के आकार में कमी और असन्तुलित शारीरिक वृद्धि।

शारीरिक ढाँचें में हो रहे तेज परिवर्तन, नाड़ी संस्थान तथा ग्रन्धि संस्थान की असामान्य क्रियाओं तथा बढ़ते हुए सामाजिक अनुभवों के कारण किषोरों में भावात्मक वेचैनी उत्पन्न हो जाती है। इनकी भावात्मकता कभी कभी अपनी सीमा को भी पार कर जाती है। उनकी मनःस्थिति उत्साह और उदासी के झूलों में झूलती रहती है। एक क्षण में उनका उत्साह उच्चतम शिखर को पहुँच जाता है। तो दूसरे क्षण उनकी मनःस्थिति उदासी की गहराई में डूबने लगती है। यहाँ तक कि कभी कभी वे आत्महत्या की बात सोचने लगते हैं। कभी आँसू, कभी मुस्कराहटें कभी स्वार्थहीनता, कभी स्वार्थपरकता, कभी आत्मविश्वास, कभी उपेक्षा जोकि किशोरावस्था की सामान्य विशेषताएँ है। मानसिक विकास के कारण किशोर हर बात में दोष ढूँढने लगता है। वास्तव में वह प्रत्येक सम्बन्धित वस्तु का ज्ञान प्राप्त करके अपने मानसिक क्षेत्र को विस्तृत करना चाहता है। जिन किशोरों का मानसिक विकास अपेक्षाकृत श्रेष्ठ होता है उन्हें समायोजन की समस्या का सामना इसलिए करना पड़ता है क्योंकि उनके माता–पिता तथा अध्यापक उसे अत्यन्त कठिन प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति में डाल रहे हैं और जिन किशोरों का मानसिक विकास धीमी गति से होती है उन्हं समायोजन की समस्या का सामना इसलिए करना पड़ता है क्योंकि उन्हें लगता है कि उनके लिए शैक्षणिक विषयों में निपुणता प्राप्त करना कठिन है। कभी–कभी किशोर अपनी पारिवारिक स्थितियों में अपने आपको नहीं ढाल सकता। पारिवारिक समायोजन की समस्या इसलिए उत्पन्न होती है। किशोर की आवश्यकताएँ बढ़ जाती हैं परन्तु माता–पिता उसकी आवश्यकाताओं को पूरा नहीं कर सकते। किशोर एक स्वतन्त्र व्यक्ति की तरह व्यवहार करने लगता है परन्तु उसके माता–पिता उसके स्वतन्त्र व्यवहार का विरोध करते हैं। इसी से कठिनाई हो जाती है। वह उसे ऐसे अनुभव करने लगता है जैसे माता–पिता उसे बन्धन में रखना चाहते हों।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व– किशोरावस्था बहुत सी शारीरिक तथा संवेगात्मक गड़बड़ी के कारण कोमल अवस्था होती है इसलिए किशोरवस्था के बालको को कुछ बुनियादी आवश्यकताओं द्वारा होने वाली विभिन कठिनाईयों तथा समायोजन सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

इस प्रकार की अवस्था में बच्चे अपने आपको पूर्ण प्रौढ समझते हैं इसलिए वे स्वतन्त्रता की आवश्यकता अनुभव करते हैं। इस इच्छा के कारण समायोजन स्थापित करने में कठिनाइयाँ पैदा होती हैं। माता–पिता तथा अध्यापकों को चाहिए कि वे उन्हें पूर्ण व्यक्ति समझें तथा उन्हें स्वतन्त्रता तथा उत्तरदायित्व दे दें।

आत्म–निर्भरता से आशय है कि वे अपने जीवन में जो चाहे कर सकें। इस आवष्यकता की पूर्ति शिक्षा तथा व्यवसाय से सम्बन्धित निर्देशन देकर की जा सकती है। अतः उनकी पाठ्य पुस्तकें ऐसी

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-III, Issues-21, YEAR- Sept.-2021

हों जिनमें उनका रूझान हो तथा वे रूचि ले सकें।

वे धार्मिक मामलों में रूचि लेते हैं। उनका विषय–दर्शनशास्त्र की चर्चा करना ही नहीं बल्कि आचरण, धर्म तथा भविश्य के बारे में वार्तालाप करना होता है। अतः अध्यापकों तथा माता–पिता का यह कर्तव्य है कि वे उनकी इस आवश्यकता को पूरा करें तथा धर्म शिक्षा और नैतिक ट्रेनिंग पर बल दें, नही तो माता–पिता तथा बच्चों के मध्य झगड़ा उठ खड़ा होगा। बालक माता–पिता के सहारे के बिना कष्ट उठाते हैं। बच्चों से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए ताकि वे निराशाओं तथा समस्याओं से बच सकें। यह अवस्था तीव्र विकास का समय हैं शरीर लम्बा होता है, भार बढ़ता है और शरीर हर प्रकार से वृद्धि करता है। इसलिए जीवन के दूसरे चरणों की अपेक्षा इस चरण पर मात्रा तथा गुण दृष्टिकोण से अधिक अच्छी खुराक की आवश्यकता है। माता–पिता, अध्यापकों तथा शिक्षा शास्त्रियों का यह कर्तव्य है कि वे देखें कि बच्चों को सादा तथा पौष्टिक भोजन की उचित मात्रा उचित समय पर मिलनी चाहिए। खुराक का गुणकारी होना भी आवश्यक है। यह अवस्था स्व–श्रृंगार की आयु होती है और बच्चे आत्म–चेतन होते है। उनमें दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने की तीव्र चाह होती है। वे प्रत्येक क्षेत्र में अपने आपको अभिव्यक्त करना चाहते है। इसके पीछे आत्म पहचान का संवेग काम करता है। अतः माता–पिता और अध्यापकों का कर्तव्य है कि वे इस बात का पूरा–पूरा ध्यान रखें। इन बच्चों को पूर्ण व्यक्तियों के तौर पर सम्मान मिलना चाहिए। इस काल में लिंग प्रवृत्ति परिपक्व और तीव्र हो जाती है। वे विरोधी लिंग को मोहित करने के लिए अपने शरीर कर श्रंगार करते है। वे विरोधी लिंग से मिलाप की अच्छा का अनुभव करते हैं। अतः माता–पिता तथा अध्यापकों को चाहिए कि वे से अवसर दें जिनके द्वारा उनकी आवश्यकताएँ शुद्ध हो जाएँ।

किशोरावस्था में बालक पुराने अनुभवों को पसन्द नहीं करते। वे नये से नये अनुभवों में रूचि लेते हैं। उनकी इस इच्छा की सन्तुष्टि पर्यटन या ट्रिप, सैर सपाटे तथा स्कूल में पाठ्यक्रम सम्बन्धित क्रियाओं द्वारा की जा सकती है। माता–पिता, अध्यापकों तथा शिक्षाशास्त्रियों को यथासम्भव किशोर अवस्था के बालकों की आवश्यकताओं की तृप्ति करनी चाहिए। परन्तु फिर भी जिस वस्तु की आवश्यकता है वह यह है कि उनके मनोविज्ञान को समझा जाए और उनकी कठिनाईयों में उनकी सहायता की जाये। किशोरावस्था में छात्र व छात्राओं का समायोजन करना अत्यन्त जटिल है। प्रस्तुत शोध में किशोर छात्र व छात्राओं के समायोजन को जानने का प्रयास किया है। समस्या कथन "किशोरावस्था में छात्र व छात्राओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन" समस्या कथन में प्रयुक्त शब्दावली की क्रियात्मक परिभाषा किशोर/किशोरावस्था किशोरावस्था शब्द अंग्रेजी के 'एडोलसंस' का हिन्दी रूपान्तरण है। इसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द 'एडोलसियर' से हुई है जिसका अर्थ है परिपक्वता की ओर बढ़ाना। अतः हम शाब्दिक अर्थ के रूप में हम कह सकते है कि किशोरावस्था वह काल है, जो परिपवक्ता की ओर संक्रमण करता है।

स्टेनले हॉल के अनुसार – "किशोरावस्था बड़े संघर्ष तनाव तूफान तथा विरोध की अवस्था है।"

क्रो एवं क्रो के अनुसार – "किशोर ही वर्तमान की शक्ति और भावी आशा को प्रस्तुत करता है।"

जीन पियाजे के कथानानुसार – "किशोरावस्था आदर्शों की अवस्था है सिद्धान्तों के निर्माण की अवस्था है, साथ ही जीवन का सामान्य समायोजन है।"

विलियम बर्टन के अनुसार – "किशोरावस्था एक पुरानी, जागरूक, शालीन, सामान्य, स्वार्थी, आदर्शवादी, संकीर्ण, सहानुभूतिपूर्ण और क्रूर व्यक्ति की स्थिति है।"

हैडो कमेटी रिर्पोट के अनुसार – "बारह वर्ष से अठारह वर्ष तक की आयु तक का बालक किशोर कहलाता है। इस आयु में बालक की नसों में ज्वार उठना आरम्भ होता है। यदि इस ज्वार का बाढ़ के समय उपयोग कर लया जाये एवं इसकी शक्ति और धारा के साथ साथ नई यात्रा आरम्भ कर दी जाये तो सफलता प्राप्त की जा सकती है।"

आर्थर एस0 रेबर के अनुसार – "विकास की वह अवस्था है, जो बाल्यकाल के समापन तथा प्रौढ़ावस्था के आरम्भ तक शारीरिक व मनोवैज्ञानिक परिपक्वता गहण करती है, किशोरावस्था कहलाती है।"

कूहलन के अनुसार – "किशोरावस्था वह काल है जिसकी विशेषताएँ हैं, लिंगी, सामाजिक, व्यावसायिक, आदर्श सम्बन्धित समायोजन और माता–पिता पर निभरता से मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टा।"

अतः उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि इस काल की घटनाएँ व्यक्ति के समूचे व्यक्तित्व को प्रभावित करती है, इसलिए इसे बहुत ही नाजुक समय कहा जाता है। कई मनोवैज्ञानिक इसे 'नवजन्म' की संज्ञा देते है क्योंकि इस काल में नये लक्षण विकसित हो रहे होते हैं।

समायोजन– प्रत्येक जीवित व्यक्ति की कुछ न कुछ समस्याएँ और प्रभावशाली होती है। किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत परेशानियों इस बात पर निर्भर नहीं करती है कि वह कितनी समस्याओं और परेशानियों का सामना करता है बल्कि इस बात पर निर्भर करती है कि वह इन समस्याओं और परेशानियों के प्रति किस प्रकार की प्रतिक्रिया करता है या इनमें वह किस प्रकार से समायोजन करता है।

स्किनर के अनुसार – " समायोजन से हमारा अभिप्राय उन बातों से है सामूहिक क्रिया कलापों में स्वास्थ्य एवं उत्साहजनक ढंग से भाग

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-III, Issues-21, YEAR- Sept.-2021

लेना समय पड़ने पर नेतृत्व का भार उठाने की सीमा तक उत्तरदायित्व का वहन करना उससे बढ़कर समायोजन में अपने को किसी प्रकार के धोखे से बचाने की कोशिश करना।''

अलेक्जेण्डर एवं ट्रेडर्स के अनुसार – ''समायोजन का अर्थ आवश्यकाताओं, असन्तोष, भाग्नाशाओं एवं संघर्ष से निपटने की क्षमता, शान्तिमय जीवन व्यतीत करने की योग्यता आदि बातों से है दूसरे व्यक्तियों के साथ सफलतापूर्वक रहने की योग्यात प्राप्त करना है अतः समायोजन का अर्थ व्यक्ति की आन्तरिक एवं वाह्य जगत की आवश्यकाताओं में सन्तोषजनक सम्बन्ध स्थापित करना है।''

अध्ययन के उद्देश्य–

1. किशोर छात्र एवं छात्राओं के सामाजिक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन।
2. किशोर छात्र एवं छात्राओं के शैक्षिक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन।
3. किशोर छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अस्थाना, विपिन एवं अस्थाना, श्वेता (2012) : ''शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी'' श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
2. गुप्ता, एस0पी0 (2010) : ''मनोविज्ञान सांख्यिकीय विधियॉ'' शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. गुप्ता, एस0पी0 एवं गुप्ता, अलका (2012) : ''उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान'' शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
4. फारलेन, मैक (1954) : ''बिहेवियर प्रॉब्लम्स ऑफ नार्मल चिल्ड्रेन'' कैलिफोर्निया।
5. भटनागर, ए0बी0 एवं भटनागर, मीनाक्षी (2002) : ''शैक्षिक मनोविज्ञान इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मरेठ।
6. भार्गव, महेश चन्द्र हरप्रसाद (2003) : ''आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन'' भार्गव पुस्तक प्रकाशन, आगरा।
7. मफी एण्ड मर्फी (1993) : ''प्रयोगात्मक सामाजिक मनोविज्ञान'' न्यूकोम्बा।
8. त्यागी एवं पाठक (2012) : ''शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त'' विनोद पुस्तक भण्डार, आगरा–2।
9. योगेन्द्र जीत (1932) : ''विकासात्मक मनोविज्ञान'' विनोद पुस्तक मंन्दिर, आगरा।
10. शर्मा, आर0ए0 एवं शर्मा, आर0के0 (2006) : ''शैक्षिक तथा मनासिक मापन एवं मूल्यांकन'' सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ।
11. श्रीवास्तव, डी0एन0एवं वर्मा, प्रीति (2012) : ''मनोविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकीय, विनोद पुस्तक में मन्दिर, आगरा।

*****